कानून की अवमानना का दायरा समान हो

कानून से जुड़े संस्थानों के आकस्मिक और स्वैच्छिक विचलन को रोकने के प्रयास सराहनीय होते हैं। हम ऐसे समय में रह रहे हैं, जहां हमारे संस्थान एक प्रकार की गिरावट की प्रक्रिया में प्रवेश कर रहे हैं। भगवद गीता में कृष्ण ने यदा यदा हि धर्मस्य का आश्वासन दिया है। इसके साथ ही हम सब कानून और उसके संस्थानों की वैधता की रक्षा करने में आम सहयोगी की भूमिका निभाना चाहते हैं। कानून की गरिमा को बनाए रखने का विषय न्यायाधीशों के साथ हम सबके भी लिए चिंताजनक होना चाहिए।

दुर्भाग्यवश, कानून की अवमानना की रक्षा का इस्तेमाल मुख्य रूप से अपनी संवेदनशील गरिमा की रक्षा या अपने अधिकार के माध्यम से दूसरों को धमकाने के लिए किया गया है। एक न्यायाधीश ने तो रेलवे प्लेटफार्म पर ही एक अधीनस्थ रेलवे अधिकारी को इसलिए सजा सुनाई थी, क्योंकि वह अंतिम क्षण में आयोजित उनकी यात्रा के लिए आरक्षण का प्रबंध नहीं कर सका था।

इस तथ्य को समझा जाना चाहिए कि न्यायाधीश कानून नहीं है। कहीं गहराई में उन्हें कानून निर्माता तो समझा ही जाता है। हममें से सभी कानून के अधीन हैं। इसके ऊपर नहीं हैं। एक संवैधानिक गणतंत्र में कानून की संप्रभुता सर्वोपरि होती है। इसकी रक्षा में हम सबका सहयोग आवश्यक है। समय आ गया है, जब कानून की अवमानना का आह्वान किया जाए, और न्यायाधीशों के खिलाफ भी इसके अधीन कार्यवाही हो। अवमानना के कानून की संस्था की रक्षा करने की आवश्यकता में न केवल व्यक्तिगत बल्कि मानवता के स्तर पर प्रयास किया जाना चाहिए। इन सबमें हमारे माननीय न्यायाधीशों को छूट दिए जाने का कोई कारण समझ में नहीं आता। उन्हें भी कानून की संप्रभुता की रक्षा के लिए उत्तरदायी होना ही होगा।

कानून के संस्थानों की वैधता एक जटिल व्यवसाय है। अगर पूर्व न्यायाधीश रंजन गोगोई पक्षकार वकील जैसा सोचते हैं कि तकनीकी रूप से सही होने के लिए इसे किसी प्रकार से तोडा-मरोडा जा सकता है, तो यह गलत है। गांधीजी ने आखिरकार असहयोग और सत्याग्रह जैसी राजनीतिक तकनीकों को ईजाद किया था, जिससे औपनिवेशिक राज्य की वैधता को चुनौती दी जा सकती थी। हमें पता है कि इस चुनौती क समक्ष अंगे्रजी कानून हार मान गया था। भले ही स्वतंत्रता-पश्चात के भारत ने उस कानूनी तंत्र के अवैध कानूनों को बनाए रखने का निश्चय कर लिया।

कानून और नैतिकता एक ही बात नहीं हैं। नैतिकता का क्षेत्र बहुत कुछ अनिवार्य को तब खो देता है, जब वह कानून का मामला बन जाता है। अच्छे और बुरे का स्वतंत्र रूप से चुनाव करना ही नैतिकता का सार है। कानून और नैतिकता के बीच एक फिसलन भरा रिश्ता है। कानूनी संस्थान, नैतिकता की सामान्य साझा धारणाओं से बहुत दूर नहीं जा सकते। वास्तव में हमारे न्यायालयों ने सरकारों को यह याद दिलाने में सराहनीय काम किया है कि उनकी वैधता दमन करने वाली ताकतों में नहीं, बल्कि लोगों की नैतिक समझ के साथ तालमेल बिठाने में है। ये हमारी अदालतें ही थीं, जिन्होंने कुछ वर्षों पूर्व सरकार को भूख से मरने वालों के लिए हमारे अन्न-कोष खोलने का निर्णय दिया था। यह तर्क ऐसे समय में समस्याग्रस्त लग सकता है, जब कुछ लोग नैतिक अर्थ के अनन्य अभिव्यक्ति के अधिकार पर घमंड दिखा रहे हैं। परंतु कानून को तो प्रबल होना चाहिए। जोर से बोलने वाले 'राष्ट्रवादियों' की खाप पंचायत को संविधान और कानून को रौंदने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

कानून की संस्थाओं को कम और क्षतिग्रस्त बताना एक त्रुटिपूर्ण कथन हो सकता है। वास्तव में, सम्मान के साथ, अवमानना शब्द अपर्याप्त लगता है।

'द इंडियन एक्सप्रेस' में प्रकाशित आलोक राव के लेख पर आधारित।